बाल उत्पीड़न – एक गंभीर सामाजिक चुनौती

योगेन्द्र*
सुषमा**

शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 के अंतर्गत 6-14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पाने का हक है। परंतु आज भी बहुत से बच्चे चौराहों पर, ढाबों/या होटलों में, दुकानों में अथवा छोटे-मोटे घरेलू उद्योगों में अमानवीय परिस्थितियों में काम करते दिखाई देते हैं। ये बच्चे खेलने-कूदने और पढ़ने के स्थान पर शोषण और उत्पीड़न का शिकार होते हैं, प्रस्तुत लेख में बाल मज़दूरी और बाल उत्पीड़न से जुड़ी चुनौतियों पर चर्चा की गई है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके विद्यालयों में आकार लेता है। प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल करके सरकार ने जता दिया है कि वह बालक-बालिकाओं की शिक्षा के प्रति कितनी गंभीर है। परंतु शिक्षा के साथ-साथ सुरक्षा और सम्मानपूर्वक जीवन का अधिकार भी उतना ही महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य से आज असुरक्षा और जीवन में असम्मान का खतरा बढ़ता जा रहा है और जब बात नौनिहालों की हो तो स्थिति और भी गंभीर हो जाती है। आज़ादी के 67 वर्षों बाद भी देश बाल मज़दूरी के अभिशाप से मुक्त नहीं हो पाया है और बाल उत्पीड़न अपने भयावह रूप में मौजूद है। कानूनों का अंबार इन सबको रोकने में असमर्थ है। इस स्थिति को बदलने के लिए सामाजिक प्रतिबद्धता तथा सहयोग अपरिहार्य है। जिन कंधों पर कल के भारत का भविष्य टिका है, उन्हें मज़बूत करने की आवश्यकता है। कमज़ोर, उत्पीड़ित और विवश बचपन की नींव पर उज्ज्वल और सुदृढ़ देश की इमारत खड़ी नहीं हो सकती।

बचपन यानि मासूम चेहरा, पवित्र भावनाएँ, दिल खोल हँसी, भोले-भाले सवाल और सीधे-सादे जवाब। उम्र का वो दौर जब आप दीन-दुनिया के जंजाल और झंझटों से मुक्त होकर गुड्डे-गुड़ियों से खेलते हैं, तितलियों के पीछे भागते हैं, चिड़ियों

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* सामाजिक विज्ञान, के.सी. शिक्षण महाविद्यालय, गन्नैर सोनीपत, हरियाणा
** *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* अंग्रेज़ी शिक्षण, के.सी.शिक्षण महाविद्यालय, गन्नैर सोनीपत, हरियाणा

Chapter 3.indd 24 4/6/2017 10:59:57 AM

की तरह चहचहाते हैं, पेड़ों पर चढ़कर कच्चे आम खाते हैं, बारिश में भीगते हुए स्कूल से घर आते हैं, दीवारों पर कूद-फ़ाँद करते हैं और अपनी मन-मर्ज़ी से सोते और जागते हैं। जीवन के सबसे खुशनुमा, बेपरवाह और मस्ती भरे दिनों की जब भी याद आती है तो मैं और मेरी तरह बहुत से लोग बचपन की यादों की पगडंडियों पर फ़िर से चल पड़ते हैं। इस पगडंडी पर वर्तमान जीवन के कंक्रीट से बने रास्तों की तरह आकांक्षाओं और लालसाओं के दौड़ते हुए वाहनों की भागमभाग नहीं है, ऊँची-ऊँची इमारतों में कैद होकर रहने को विवश लोगों के मन में ताज़ी हवा की चाहत की छटपटाहट नहीं है और न ही घड़ी की सुइयों के इशारों पर नाचने की मजबूरी है। बचपन की इस कच्ची पगडंडी पर बारिश में भीगी हुई मिट्टी की सौंधी महक है, पगडंडी के दोनों तरफ़ खुले मैदान हैं, ठंडी हवा के झोंके तन-मन को तरोताज़ा बना देते हैं, हज़ारों बच्चे झुँड बनाकर हँसते-खेलते, बतियाते-शोर मचाते, गिरते-पड़ते भाग रहे हैं। यहाँ ना कोई चिंता है और ना ही कोई दुविधा, बस उल्लास है उमंग है, मस्ती है।

पर दुनिया भर में और हमारे अपने देश में भी करोड़ों बच्चे हैं, जिनके लिए बचपन खुशनुमा याद नहीं है और न ही यह ज़िंदगी का 'सुनहरा दौर' है। इन किस्मत के मारे बच्चों के लिए बचपन का मतलब है— भूख, गरीबी, शोषण, शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न, यौन हिंसा और अवसाद। ये बच्चे हमारे देश का भविष्य हैं, लेकिन इनका अपना भविष्य क्या है, कोई नहीं जानता। बाल मज़दूरी तथा उत्पीड़न आज हमारे समाज की सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। अगर मनोवैज्ञानिक रूप से देखा जाए तो भारत में 11 वर्ष तक की आयु के बच्चों को बालक माना जाता है, लेकिन तमाम सरकारी योजनाएँ बालक की आयु सीमा 14 वर्ष तक मानते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या लगभग 1,210,000,000 है, जिसमें 14 वर्ष की आयु वर्ग की जनसंख्या लगभग 29 प्रतिशत है।

शून्य से छः वर्ष के बालक-बालिकाओं की कुल संख्या 158,789,287 है, जिसमें शहरी क्षेत्र में 41,203,773 तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 117,585,514 बालक-बालिकाएँ रहते हैं। कुल मिलाकर हमारी कुल जनसंख्या का 13.12 प्रतिशत भाग 0–6 वर्ष की आयु वर्ग का है। (जनगणना 2011 के अनुसार) ये बच्चे ही भविष्य में भारत वर्ष की प्रगति की दिशा और दशा के निर्धारण में महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होंगे। वैसे देखा जाए तो देश की प्रगति व विकास का आकलन आर्थिक आधार पर किया जाता है, जिसमें प्रति व्यक्ति आय और सकल घरेलू उत्पाद प्रमुख हैं, परंतु देश की खुशहाली का वास्तविक आकलन उस देश के बच्चों के चेहरों पर फैली मुस्कान और उनमें मौजूद सुरक्षा की भावना से है। इसके लिए आवश्यक है कि हर बच्चा स्कूल जाए, शिक्षा ग्रहण करे, उसे मेहनत मज़दूरी की चिंताओं से मुक्त रखा जाए, ताकि वह शिक्षा प्राप्त कर स्वावलंबी बन सके और गरीबी व शोषण के दुश्चक्र से निकल सके। आइए, अब इन्हीं तथ्यों पर एक निगाह डालते हैं।

भारत में करोड़ों बच्चे हैं, जो कि 5–14 वर्ष की आयु के बीच के हैं और मज़दूरी करके परिवार का पेट पालते हैं। 2001 तथा 2011 की जनगणना के आधार पर देश के सर्वाधिक बाल मज़दूरों वाले शीर्ष पाँच राज्यों का आँकड़ा इस प्रकार है –

क्र.सं.	राज्य	जनगणना 2001	जनगणना 2011
1.	उत्तर प्रदेश	19279970	4353247
2.	आन्ध्र प्रदेश	1363339	404851
3.	राजस्थान	7262570	252338
4.	बिहार	1117500	451590
5.	मध्य प्रदेश	1065259	286310

(आँकड़े श्रम मंत्रालय, भारत सरकार के सौजन्य से)

देशभर के करोड़ों बाल मज़दूरों में से अधिकतर बच्चे कृषि जैसे असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं (लगभग 78 प्रतिशत) तथा अन्य कारखानों तथा मिलों में अथवा ईंट भट्टों पर काम करने वाले हैं, लेकिन ये बाल श्रमिक दोनों ही जगह उपेक्षित भी हैं तथा उत्पीड़ित भी। बाल श्रम एक्ट 1986, फ़ैक्ट्री एक्ट 1948, बीड़ी, सिगार श्रमिक एक्ट 1966, खदान एक्ट 1952, सभी 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के श्रमिक के रूप में काम करने के विरुद्ध हैं, लेकिन वास्तविकता यही है कि इन जगहों पर न केवल बाल श्रमिक काम कर रहे हैं, बल्कि खतरनाक बिमारियों का शिकार भी हो रहे हैं। इन बच्चों की सही जगह स्कूल है और इसके लिए सामाजिक उत्तरदायित्व निश्चित करना अनिवार्य है, क्योंकि इस स्थिति में सुधार केवल कानून बनाने से नहीं लाया जा सकता।

बाल मज़दूरी के साथ जुड़ा एक अन्य मुद्दा बाल उत्पीड़न का है। वास्तव में दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि बालक शारीरिक रूप से कमज़ोर और मानसिक रूप से अपरिपक्व होते हैं, इसलिए इनका शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न सरलता से किया जा सकता है। किसी भी संगठित, असंगठित या घरेलू क्षेत्र में काम करने वाले बच्चों के लिए अधिक काम कम मज़दूरी, काम करने की दमघोटू परिस्थितियाँ, प्रताड़ना, अपमान, मारपीट आम बात है, क्योंकि ये बच्चे इतने समर्थ नहीं होते कि उत्पीड़न के खिलाफ़ आवाज़ उठा सकें। लिहाज़ा अपने जीवन को जैसे-तैसे जीने के लिए विवश हैं। बसों, ट्रेनों, स्टेशनों या सड़कों पर भीख मांगते, रेड लाइट होने पर गाड़ियों में बैठे लोगों से खिलौने या फूल खरीदने की मनुहार करते, चौराहों पर करतब दिखाते, सड़क किनारे पड़े कूड़े के ढेर से खाने की चीज़ें तलाशते, बूट पॉलिश करवाने के लिए राहगीरों के पैर पकड़ते बच्चे भी हमारे सभ्य समाज का ही हिस्सा हैं, सोचकर ताज्जुब होता है।

किंतु मात्र मज़दूरी करने वाले बच्चे ही उत्पीड़न का शिकार हों ऐसा नहीं है। हमारे विकसित, प्रगतिशील सोच वाले सफ़ेद पोश समाज के भीतर भी बाल उत्पीड़न के दाग उतने ही गहरे हैं, जितने कि इससे बाहर के दायरे में शामिल दुनिया के हैं। आए दिन होने वाले अपराधों में बच्चों के विरुद्ध

होने वाले अपराधों का आँकड़ा बढ़ता जा रहा है। एक समय था जब शत्रु के बच्चों पर भी रहम किया जाता था, पर आज हालात यह हैं कि बच्चों पर चारों ओर से आक्रमण हो रहे हैं। लूटपाट, अपहरण, फ़िरौती, दुश्कर्म व हत्या जैसे कुकृत्यों द्वारा बच्चों से अपराधी उनका बचपन छीन रहे हैं। वे न अपनों के बीच सुरक्षित हैं, न ही परायों के बीच। वर्ष 2012 में बच्चों के विरुद्ध अपराधों के कुल 33,538 मामले दर्ज किए गए। इनमें अपहरण के 18,266, उत्पीड़न के 210, आत्महत्या के लिए विवश करने के 144, बालिकाओं के उत्पीड़न व शोषण 806 तथा शेष मामले हत्या तथा अन्य रहे (अपराध ब्यूरो, भारत सरकार द्वारा जारी आँकड़ों द्वारा)।

बच्चों को ईश्वर का स्वरूप मानने वाले तथा कन्याओं को देवी रूप में पूजने वाले हमारे समाज में बाल-उत्पीड़न तथा शोषण कितने भयावह रूप में मौजूद हैं, इसका प्रमाण विगत वर्ष दिल्ली के संभ्रात इलाके में घटी घटना देखकर ज्ञात होता है। यहाँ एक कंपनी में उच्च पदासीन महिला के घर से पूर्वोत्तर की एक किशोरी को पुलिस ने लगभग नग्न अवस्था में मुक्त कराया। यह किशोरी उक्त महिला के घर में घरेलू सहायिका के रूप में कार्य करती थी। उसे भूखा रखा जाता था, गर्म लोहे से दागा जाता था तथा उसके शरीर पर चाकू तथा ब्लेड से दिए गए ज़ख्मों के निशान मौजूद थे। दिल्ली की पाँच वर्षीय गुड़िया जिस अमानवीय उत्पीड़न का शिकार बनी, क्या उस दुर्घटना की काली छाया से वह कभी मुक्ति पा सकेगी? उपरोक्त दोनों घटनाएँ हमारे समाज की घिनौनी तस्वीर पेश करती हैं। पंडेर कांड के शिकार मासूमों की हृदय विदारक मौतें संवेदनशील मनुष्यों के रोंगटे खड़े करने के लिए क्या काफ़ी नहीं हैं?

परंतु अधिकतर मामले प्रकाश में भी नहीं आ पाते। ऐसे मामले या तो परिवार वाले ही सामने नहीं लाते या पुलिस द्वारा दर्ज नहीं किए जाते। अपहरण, फ़िरौती, मानव तस्करी या बाल वेश्यावृत्ति का शिकार ये बच्चे किस प्रकार समाजोपयोगी नागरिक बन सकेंगे, यह प्रश्न अनुत्तरित है।

अब तस्वीर का दूसरा पहलू देखिए, हाल के वर्षों में बाल अपराधियों की संख्या भी लगातार बढ़ी है। ये बढ़ोतरी अकारण या अचानक नहीं हुई है। अक्सर देखा जाता है ये बाल अपराधी बचपन में स्वयं भी शोषण तथा उत्पीड़न का शिकार होते हैं तथा बड़े होने पर हथियारों तथा ताकत के बल पर संगीन वारदातों को अंजाम देते हैं। पुलिस की पकड़ में आने वाले तथा अदालतों से सज़ायाफ़ता अपराधी अक्सर खुद भी बचपन में शोषण तथा उत्पीड़न का शिकार रहे हैं।

बाल सुधार गृहों में आने वाले बाल अपराधियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है, लेकिन ये सुधार गृह कितनी सफ़लता व ईमानदारी से अपना काम कर रहे हैं, ये हम सब जानते हैं। इधर कुछ समय से अमेरिका और कुछ अन्य यूरोपीय देशों की भाँति भारत में भी बड़े अपराधों में शामिल किशोरों पर वयस्कों की भाँति मुकद्दमा चलाने और दंड का प्रावधान करने की माँग में बढ़ोतरी हुई है, जो निर्भया कांड के बाद एक बहस का मुद्दा बन गई है। परंतु मूल प्रश्न यह है कि आखिर समाज में इस प्रकार की परिस्थितियाँ क्यों बन रही हैं कि किशोर शिक्षा

के क्षेत्र की बजाए अपराध के क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं, प्रोत्साहन देने के बजाए मृत्युदंड देने की आवाज़ बुलंद हो रही है। क्या समाज इसकी ज़िम्मेदारी से बच सकता है?

अकेले देश का दिल यानि दिल्ली में 50000 बच्चे बेघर हैं जो सड़कों पर सोते हैं, ये या तो अनाथ हैं या प्रताड़ना से तंग आकर घरों से भागकर यहाँ पहुँचे हैं। यदि कोई बच्चा सबसे सुरक्षित जगह यानि घर से इसलिए भागता है, ताकि प्रताड़ना से बच सके तो सोचा जा सकता है कि अपना घर या किरण जैसे अनाथालय या आश्रय स्थलों से बच्चों को क्यों भागना पड़ रहा है। अनाथ बच्चों के लिए या अपंग या बेसहारा बच्चों के लिए कुकुरमुत्तों की तरह उग आए इन गैर सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त केंद्रों की सच्चाई जब कभी समाचार बनती है तो खुद को इस तथाकथित सभ्य समाज का हिस्सा कहने में शर्म महसूस होती है।

इन सबके लिए हमारा पूरा समाज दोषी है। सरकार और समाज यदि मिलकर भी इस उत्पीड़न को नहीं रोक पा रहें तो स्पष्ट है कि कहीं न कहीं सभी इस भयावह कृत्य में शामिल हैं। सड़कों पर रेलवे स्टेशनों या बस स्टैंड या भीड़भाड़ वाली जगहों पर रोते-बिलखते कितने बेसहारा बच्चे हमें दिखते हैं। क्या कोई ऐसी व्यवस्था विकसित नहीं की जा सकती कि ये बच्चे अपराधियों के हाथों में न पड़कर अपने घरों या किसी महफूज़ जगह पहुँच जाएँ, जहाँ ये सम्मानपूर्वक जीवन जीना सीख सकें और अपना और समाज का भविष्य सँवार सकें।

इक्कसवीं सदी में भारत महाशक्ति बनने के सपने देख रहा है। इस सपने को साकार करने के लिए सरकार ने शिक्षा के अधिकार रूपी कलम उसके हाथों में थमा दी है, पर इसमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास व प्रेम की स्याही हमें ही भरनी होगी। क्या समाज कभी इतना सुरक्षित बन सकेगा कि बच्चे फ़िर से भरी दोपहर में बिना किसी डर के गलियों में उधम मचाते खेल सकें या पेड़ों पर झूल सकें या शाम ढलने के बाद भी बेखौफ़ होकर खेलते-कूदते घर लौट सकें? जवाब हमें मिलकर ढूँढ़ना है, क्योंकि सवालों का चक्रव्यूह भी हमारा अपना रचा हुआ है।